उषा प्रियंवदा के साहित्य में चित्रित समस्याएं

डॉ. कमलेश कुमारी,

सहायक प्रोफेसर, अहीर कॉलेज रेवाड़ी

हिन्दी साहित्य की प्रख्यात लेखिका उषा प्रियंवदा एक प्रवासी भारतीय हैं जो अंग्रेजी की अध्येता हाते हुए भी जिनकी लेखकी से हिन्दी साहित्य कोश समृद्ध रहा। सन् 1930 में कानपुर में जन्मी उषा जी अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., डी.लिट. करने के उपरांत तीन वर्ष दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन के उपरांत फुलब्राइट स्कालरशिप पर अमेरिका प्रस्थान किया जहां ब्लूमिंगटन, इंडियाना में दो वर्ष पोस्ट डॉक्टर अध्ययन किया। तदुपरांत विस्कांसिन विश्वविद्यालय, मैडीसन में दक्षिण एशियाई विभाग में अपने व्यापक अनुभव, चिंतन एवं गहरे यथार्थबोध के आधार पर अनेक रचनाएं हिन्दी साहित्यिक जगत को प्रदान की हैं जिनमें 'पचपन खंभे लाल दिवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'अंतर्वंशी' आदि उपन्यास तथा 'जिंदगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', 'मेरी प्रिय कहानियां' आदि कहानी संग्रह प्रमुख हैं। इनके कथा साहित्य में भारतीय नारी की दुविधा, दिशा हीनता, कुंठा, निराशा, अतृप्ति, असुरक्षाबोध आदि को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। इसके अतिरिक्त युवा वर्ग के जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याएं तथा एकाकीपन एवं वृद्धावस्था से जूझ रहे वृद्धों की समस्याओं का अंकन इनके साहित्य में हुआ है।

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में चित्रित विभिन्न वर्गों की समस्याओं पर विचार करने से पूर्व संक्षेप में समस्या के स्वरूप पर भी विचार करना अनिवार्य हो जाता है।

अर्थ सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक क्रियाव्यापारों का मूलाधार है। अर्थाभाव से ग्रसित, बेरोजगारी की मार से पीड़ित विपन्न व्यक्ति को परिवार में भी उचित सम्मान नहीं मिलता। वह कदम–कदम पर उपेक्षित, लांछित एवं अपमानित होता है। 'जिंदगी और गुलाब के फूल' कहानी का पात्र सुबोध की परिवार में यही दशा है। इसके विपरीत अर्थोपार्जन करने वाली उसकी छोटी बहन वृंदा का घर में सम्मान भी है और महत्व भी। सुबोध की सुविधाओं यहां तक कि भोजन आदि का भी उचित ख्याल परिवार में नहीं किया जाता। यही कारण है कि वह निराशा जनित हताशा, प्रतिशोधात्मक हिंसा भावना से ग्रसित है। 'उसकी सारी चीजें वृंदा के कमरे में जा चुकी थी। सबसे पहले पढ़ने की मेज, फिर घड़ी, आराम कुरसी और अब कालीन और छोटी मेज भी। पहले अपनी चीज वृंदा के कमरे में सजी देख उसे कुछ अटपटा लगता था, पर वह अभ्यस्त हो गया था। यद्यपि उसका पुरुष हृदय घर में वृंदा की सत्ता स्वीकार न कर पाता था।'[1]

अर्थालोभ पति–पत्नी के संबंधों में बिखराव का भी कारण बनता है। कहीं पत्नी अर्भालोभ के कारण पति को खो देती है तो कहीं पति अपनी पत्नी को इस प्रकार परिवार बिखर जाता है। 'स्वीकृति' कहानी का नायक सत्या अपनी पत्नी जपा को नौकरी करने के लिए विवश करता है जबकि उसकी पत्नी उसका साहचर्य चाहती है किंतु पत्नी की भावनाओं की उपेक्षा कर वह उसे अपने से दूर धन कमाने के लिए भेज देता है। आक्रोशित, एकाकी, कुंठित, अपमानित जपा अतृप्त वासना की शांति के लिए एवं

अकेलेपन को दूर करने के लिए एक विदेशी युवक बाल से संबंध स्थापित कर लेती है। 'सत्या ने जपा के रूप, रंग उसकी भावनाओं या इच्छाओं पर कभी ध्यान नहीं दिया। जपा सदा उसके लिए निमित्त रही है। अपनी आकांक्षाओं का एक स्रोत अपनी उन्नति की सहायक।[2]

धन पारिवारिक सुख के लिए अनिवार्य होता है। किंतु धन का अधिक लालच पारिवारिक सुख में बाधक बनकर परिवार के बिखराव का कारण बन जाता है। 'मान और हठ' कहानी में अर्थेच्छा परिवार के विघटन का ही कारण बनती है। कहानी का नायक मुकुल अर्थ को महत्व देते हुए अपनी पत्नी को कहता है, 'मैं तुम्हारे जैसी हजारों को खरीद सकता हूं।'[3]

तब उसकी पत्नी उसका कटु उत्तर देती है। दोनों के अहं के टकराव के कारण पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

लेखिका ने अत्यंत सटीक ढंग से रेखांकित किया है। राधिका की माता की मृत्यु के उपरांत उसके पिता विद्या और मैं विवाह करने जा रहे हैं, राधिका ने चौंककर पापा की ओर देखा। क्षणांश में उसके ऊपर से एक तूफान गुजर गया।[4]

राधिका अपने पिता के इस फैसले को सहन नहीं कर पाती और उसका मन उस विवाह की चर्चा पर आक्रोशित हो उठता, 'राधिका भक से जल उठी, जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूं, यह ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूं और मैं जो चाहूंगी वही करूंगी।[5]

राधिका फाइन आर्ट्स में डिग्री लेने के लिए डैन नामक पत्रकार के साथ संबंध बनाकर अमेरिका चली जाती है किंतु उनके संबंध बनाकर अमेरिका चली जाती है किंतु उनके संबंध अधिक दिन तक नहीं टिक पाते। भारत आकर वह अपने परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त अक्षय और मनीष से मिलती है किंतु वह दोनों में जीवन साथी के गुण न पाकर उनसे विवाह नहीं करती। राधिका की निराशा, घुटन, एकाकीपन, संत्रास और कुंठा उसे सामान्य युवती की स्थिति में रहने नहीं देती।

भौतिकवादी युग में मानवीय भावनाओं पर स्वार्थ, अर्थलिप्सा अधिक हावी है। मनुष्य अर्थलिप्सा एवं अपने स्वार्थों के दृष्टिपथ में रखते हुए समाज के अन्य लोगों एवं परिवार के सदस्यों की भावनाओं का ख्याल भी नहीं करता। उषा प्रियंवदा यद्यपि आज प्रवासी हैं तो भी उन्होंने भारतीय परिवेश और भारतीय परिवेश पर पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को अत्यंत सूक्ष्मता गहनता से देखा है और अपने उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में अर्थलिप्सु परिवार द्वारा किए गए नारी के भावात्मक एवं आर्थिक शोषण की मर्मांतक चित्रण किया है। उपन्यास में सुषमा परिवार के आर्थिक पक्ष का मूलाधार है क्योंकि उसके पिता सेवानिवृत्त कर्मचारी हैं और वह नौकरी करती है। वह परिवार की आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहती है। वह परिवार की आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए करती है, 'पिता जी को पैंशन मिलती है, कितनी है, उसमें तो दो वक्त की दाल रोटी भी न चले। मैं अगर न करूं तो किसके आगे हाथ फैलाएंगे।[6]

वह विवाह योग्य युवती है किंतु अर्थ के लालच में माता–पिता उसका विवाह नहीं करना चाहते। उन्हें पता है कि अच्छे वेतन पाने वाली लड़की का विवाह करदेने पर घर का खर्च कैसे चलेगा। बेटी को आय का साधन मानकर मां–बाप अपनी सारी जिम्मेदारियों का बोझ उस पर डाल देते हैं। सुषमा की शादी की बात चलने पर उसकी अम्मा कृष्णा मौसी से कहती है, 'तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं।

भारतीय संस्कृति नैतिक मूल्यों, नारी सम्मान एवं गौरव को अत्यधिक महत्व देने वाली

हैं किंतु यह भौतिकवादी एवं भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है जिसके कारण मर्यादाओं एवं नैतिकता जैसे उच्च सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में उच्च मूल्यों के ह्रास और उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप नई पीढ़ी के आक्रोश को

भारतीय संस्कृतिक परिवेश में पत्नी नारी लज्जाशीलता को अपना आभूषण एवं गौरव मानती हैं। किंतु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से आज भारतीय नारी स्वच्छंद जीवन जीने पर बल देने लगी है तथा उन्मुक्त यौन संबंधों से भी परहेज नहीं करती। तभी तो रुकोगी नहीं राधिका उपन्यास में राधिका की ताई एवं उसकी भाभी उससे पूछती हैं, 'सिगरेट, शराब तो राधिका पीने ही लगी होगी, और क्यों, क्या वहां वाले भी ऐसा ही रद्दी लाल गेहूं खाते हैं या अच्छा अपने लिए सड़ा गला इधर भेज देते हैं? तीसरे पहर उनके झपक जाने पर भाभी पास सरक आई और पूछा, अच्छा बीबी, इतने दिन उस मर्द के साथ रहकर भी बाल–बच्चों से कैसे बरी रहीं? और मौका मिलने पर उसके पति ने भी जैसे चटखारे लेते हुए पूछ लिया कि क्या वहां सचमुच ऐसे क्लब हैं जहां लोग पत्नियां सप्ताहांत के लिए बदल लेते हैं?'[7]

उषा प्रियंवदा द्वारा लिखित कहानी 'मेनका, रम्भा, उर्वशी कहानी में निराश्रित बच्चों की पीड़ा को दर्शाया गया है कि नायिका अनाथ कुसुमी अपनी बुआ पर आश्रित है जिसको भार मानकर बुआ क्षय रोग से पीड़ित युवक से विवाह कर देना चाहती है। 'सचमुच कौन इससे शादी गरेगा न रूप न धन न विद्या।' [8]

ठीक इसी प्रकार आश्रिता कहानी में अनाथ मधु अपनी चाची द्वारा पालित है। चाची मधु से घर का काम करवाती है और उसके साथ दुर्व्यवहार करती है तथा प्रताड़ित भी करती है। खर्च से बचने के लिए वह मधु का विवाह एक अधेड़ व्यक्ति से कर देना चाहती है। 'दृष्टिदोष' कहानी की चन्द्रा अपने पति सांव से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती। सांव परम्पराओं को मानने वाले एक गरीब परिवार का युवक है जो कि अपनी मेहनत से अच्छी नौकरी पा लेता है जबकि चन्द्रा एक अमीर तथा आधुनिक अैर खुले विचारों वाले माता–पिता की बेटी है। इस प्रकार चन्द्रा साब के मध्यवर्गीय परिवार में रहन–सहन के अंतर के कारण पारिवारिक संबंधों में तनाव उत्पन्न होता है। चन्द्रा की मां चन्द्रा से कहती है, 'डार्लिंग हम लोगों से बड़ी भूल हो गयी। शादी से पहले अच्छी तरह देखभाल लेते, ऐसे जाहिल गंवार लोगों से तुम्हारी कैसे पट सकती है।'[9]

विभिन्न सामाजिक समस्याओं में वृद्धों के जीवन से जुड़ी समस्याएं अत्यंत गंभीर हैं। अर्थ का महत्व बढ़ने से व्यक्ति अधिकाधिक धन कमाने के लिए नगरों और महानगरों की ओर भाग रहा है। काम की व्यवस्तता एवं अर्थ लिप्सा ने भीतर की रागात्मकता को लगभग निगल लिया है। 'वापसी' कहानी के नायक गजाधर बाबू रेलवे की नौकरी करते हुए घर से दूर इसलिए रहे कि परिवार का ठीक ढंग से भरण–पोषण होता रहे। बच्चों को उचित शिक्षा मिलती रहे तथा उसका भविष्य भी उन्नत हो। किंतु सेवानिवृत्ति के उपरांत पूरा परिवार उन्हें अपने मध्य अवांछित व्यक्ति के रूप में देखता है। उनका सम्मान तो दूर बल्कि अपमान किया जाता है। जिस गजाधर बाबू ने घर बनाया उसी घर में उनके लिए स्थान नहीं है। 'नाश्ता कर, गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमानके लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली–सी चारपाई डाल दी गई– गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े कभी–कभी अनायास ही उस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते।'[10]

गजाधर बाबू का बेटा अमर कहता है, 'बड़े–बूढ़े हैं, चुपचाप पड़े रहें हर चीज में दखल क्यों देते हैं।[11]

उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। रिटायर होने के बाद वे परिवार पर बोझ बन जाते हैं। पत्नी तक को अपने बूढ़े पति का अहसास नहीं। गजाधर बाबू की परिवार से स्नेह की आकांक्षा धरी की धरी रह गई। स्नेह न बेटे से मिला न ही बेटी से। उनके सुख–सुविधा की चिंता दो चार दिन भी किसी ने नहीं की। नकारे जाने के कारण उनमें बेहद अकेलापन उभरने लगता है। उषा जी स्वयं प्रवासी भारतीय हैं। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में विदेशों में रह रहे भारतीयों की मनोदशा और उनके समक्ष आने वाली समस्याओं का चित्रण भी बखूबी किया है। दो संस्कृतियों के तालमेल और तद्जन्म समस्याओं से जूझते पात्रों की बदलती मनस्थितियों, संघर्ष, सफलता, असफलता का चित्रण बड़े मनोयोग से किया है। प्रायः भारतीय बेहतर अवसरों की तलाश में प्रवासी हो जाते हैं। साथ ही लड़कियों का विवाह विदेशों में बसे युवकों से होना सौभाग्य समझा जाता है। यही से शुरू होता है मोहभंग और संघर्ष का सिलसिला। विदेश की चकाचौंध में कोई सफल होता है अर्थात सफलता की सीढ़ी आसानी से चढ़ संकट से संघर्ष करते रहते हैं। 'अन्तर्वशी' उपन्यास में 'बसंती' से बनी वाना विदेशों में छोटे से छोटा काम करके धन कामना चाहती है, 'आसपास के सभी लोग एक होड़ में एक पागल दौड़ में रत हैं और छोटे मकान से बड़ा मकान, एक गाड़ी से दो गाड़ियां सस्ते से महंगा ही महंगा। छुट्टियां बीतती है स्पने में हवाई में, मैक्सिकों में. . .हाथों की उंगलियों में बड़े–बड़े हीरे झमकाती हुई वे सबके सब उसकी उपेक्षा करती है जलती हैं।[12]

वाना प्रवासी भारतीयों की असलियत जानती है। वह कहती है, 'पढ़े लिखे लोग, एम.ए. पीएच.डी. डॉक्टर टैक्सियां चलाते हैं। बैंकर अफसर लोग सड़क पर फल बेचते हैं। भले घरों की पर्दानशीन औरतें वेट्रेसों का काम करती हैं।[13]

विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों के ठाठ–बाठ ऐशो आराम की जिंदगी से प्रभावित होकर भारतीय युवा विदेशों में जाने का स्वप्न संजोते हैं क्योंकि उन्हें अपने देश में तो अच्छा वेतन मिलता है और न ही सुख–सुविधाएं। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास का पात्र दिवाकर विदेश में बसे एक अन्य पात्र मनीष के जीवन से अपनी तुलना करते हुए पत्नी से कहता है, 'मैं पूछता हूं कि मेरे देश में मेरे लिए क्या है? मेरे कॉलेज में मेरे आगे के काम लायक लैब नहीं है, मेरे बच्चों को अच्छे स्कूल में दाखिला नहीं मिल रहा है। एक स्कूटर खरीदनेके लिए मुझे बरसों इंतजार करना पड़ रहा है, मेरा वेतन इतना नहीं कि मैं कभी चार दोस्तों को बुलाकर उन्हें अच्छी शराब पिला सकूं, या एक नौकर रख सकूं जिससे कम से कम मुझे दूध लेने के लिए लाईन में न खड़ा होने पड़े। बदले में मनीश को देखो।[14]

भारतीय युवक विदेशों में चले तो जाते हैं किंतु वे स्थायी रूप में वहां के नागरिक नहीं बन पाते। वे सदैव असुरक्षा की भावना से ग्रसित रहते हैं। वे वहां की संस्कृति को पूर्णरूप से आत्मसात नहीं कर पाते और अंत में उन्हें लौटना पड़ता है। यहां आकर वे एक बार फिर परिवेश से संघर्ष करते हैं। उन्हें 'रिवर्स कल्चरल शॉक' का सामना करना पड़ता है और वे यहां के सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश में अपने आपको नहीं ढाल पाते। राधिका को समझाते हुए मनीश कहता है, 'तुम घर वापस नहीं जा सकते। कुछ अजीब ही किस्म की हो गई हूं, न वहां सुखी थी न यहां।'[15]

मनीश पुनः राधिका को समझाते हुए कहता है, 'जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं, तो पहले छः महीने हम एक 'कल्चरल शॉक' के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर

हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊंची दिखाई देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल, ढाई साल, उस नए देश में रहकर उसके रीति–रिवाज के आदी होकर हम अपने देश में वापस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है, रिवर्स कल्चरल शॉक'।[16]

उच्च अध्ययन अथवा धर्नोपार्जन के लिए प्रतिभाशाली युवक–युवतियां विदेश में चले जाते हैं किंतु वहां वे संतुष्ट नहीं रह पाते। नई संस्कृति, नया परिवेश उनके मानस को आंदोलित करता है। किंतु विवशता के कारण वे वापस भी लौटकर नहीं आ सकते। उनका संतप्त मन उन्हें कचोटता रहता है। 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका राधिका की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका दुविधा ग्रस्त संतप्त एवं पीड़ित प्रवासी युवती की मनोदशा का चित्रण करती है।

निष्कर्षतः साहित्यकार सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्वाभिमान के लिए परिवेश से संघर्ष करना पड़ता है और संघर्ष करते हुए शोषित दलित पीड़ित अपमानित उपेक्षित कुंठित, ऊब और अकेलेपन के शिकार स्त्री–पुरुषों, युवक–युवतियों के संपर्क में भी आता है। जो उसके अंतस को कचोटते हैं, झकझोरते हैं। कहीं पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के अंतःसंघर्ष को अनुभव करता है तो कहीं रुढ़िवादिता, प्रगतिशीलता के टकराव को देखता है और उस टकराव के कारण निराश आक्रोशित युवा मानस की भावनाओं को समझता है तो कहीं स्वार्थरत युवा पीढ़ी द्वारा उपेक्षित वृद्धों की व्यथा और पीड़ा का अनुभव भी करता है। उषा प्रियंवदा एक सजग, भावुक एवं संवेदनशील कथाकार हैं जिन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य परिवेश को जिया है। लेखिका ने यथार्थ के धरातल पर शोषित दलित अपमाति पीड़ित नारी, आक्रोशित युवा, उपेक्षित वृद्ध समाज, एवं प्रवासियों की पीड़ा, उनके दुविधा ग्रस्त जीवन आदि का चित्रण यथार्थ के धरातल पर अंततय सजगता एवं संवेदनशील के साथ किया है।

Copyright © 2016, Dr. Kamlesh Kumari. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

1 उषा प्रियंवदा, जिंदगी और गुलाब के फूल, पृ. 131
2 उषा प्रियंवदा, कितना बड़ा झूठ, पृ. 81
3 उषा प्रियंवदा, फिर वसंत आया, पृ. 40
4 उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ.37
5 उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ.43
6 उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ.13
7 उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ. 44
8 उषा प्रियंवदा, फिर आया बसंत, पृ.. 16
9 उषा प्रियंवदा, सम्पूर्ण कहानियां, पृ. 213
10 उषा प्रियंवदा, सम्पूर्ण कहानियां, पृ. 144
11 उषा प्रियंवदा, सम्पूर्ण कहानियां, पृ. 144
12 उषा प्रियंवदा, अन्तर्वशी, पृ. 67
13 उषा प्रियंवदा, अन्तर्वशी, पृ. 90
14 उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ.77
15 उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ.70
16 उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ.86